शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

प्रो० रामचन्द्र शुक्ल–कला गुरु के रूप में नवीन कला चेतना का प्रसार

डॉ० राकेश कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, ललित कला विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
ईमेलः *rksinghkuk@gmail.com*

प्राप्तिः 18.08.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

सारांश

इसमें कोई शक नहीं कि कला एक सार्वभौम भाषा है जिसकी न तो कोई भौगोलिक सीमा है, न सामाजिक या जातीय बन्धन, फिर भी काल की कला, जाति या समाज की कला, सम्प्रदाय की कला, किसी समय विशेष की कला, विभिन्न अंचलों अथवा देशों की कला का स्वरूप भिन्न होता है। इसका मूल कारण है विचारों की भिन्नता, जीवन दर्शन की भिन्नता, धार्मिक अथवा सामाजिक मान्यताओं की भिन्नता। इतना ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति की कला दूसरे व्यक्ति की कला से भिन्न हो सकती है जैसे कि उन दोनों के चेहरे भिन्न होते हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि "आधुनिक कला में यातायात के साधन इतने तीव्रगामी अथवा सहज हो गये हैं कि विचारों और कला में भिन्नता समाप्त हो रही है। यह बात बहुत कुछ सही भी हो सकती है किन्तु यह सोचने की बात है कि यदि सभी व्यक्तियों के चेहरे एक से हो जायें, सभी के आचार–विचार जीवन दर्शन, कलायें एक सी हो जायें तो मानव समाज का जीवन तथा स्वरूप कितना नीरस और निर्जीव हो जायेगा। वास्तव में पहले तो ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि मानव की प्रकृति ही इसके विपरीत है और यदि ऐसा होता भी है तो इसे मानव बुद्धि, विवेक, कलात्मकता तथा प्रतिभा का ह्रास ही माना जायेगा। हो सकता है कि मशीनीकरण तथा अतिशय औद्योगिकता का यही परिणाम हो पर वह दिन मानव जाति के लिए एक बुरा दिन होगा।

इस सृष्टि से समीक्षावादी कला के अभियान के सूत्रधार प्रो॰ रामचन्द्र शुक्ल साधुवाद के पात्र हैं। उन्होंने और उनके सहयोगी कलाकारों ने पूरे जोर–शोर से समकालीन भारतीय कला को नई दिशा दिखाने और उसकी धारा को समाज की ओर मोड़ कर उसे सार्थक बनाने का भागीरथ प्रयास किया है।"

प्रत्येक व्यक्ति के दो या दो से अधिक व्यक्तित्व हुआ करते हैं। एक वह जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है और दूसरा अदृश्य होता है। अधिकतर दोनों एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत से लगते हैं और दोनों का ढंग निराला होता है। जो व्यक्ति इन दोनों में एकता स्थापित करने की ओर आघृत होता है वही व्यक्ति कवि, कलाकार, संगीतज्ञ या फिर भक्त बन जाता है। मैं उन लोगों की बात नहीं कर रहा जो सांसारिक स्वार्थ के लिए रोज अपना रूप बदला करते हैं। एकता स्थापित करने के दो तरीके हैं। प्रथम या तो बाह्य को समेट कर अन्तर में केन्द्रित कर

दिया जाये, द्वितीय अन्तर को प्रवाहित कर बाह्य के साथ मिला दिया जाये। प्रथम तरीका योगियों का है दूसरा कलाकारों का। प्रो॰ शुक्ल ने चित्रकला को कभी भी व्यवसाय नहीं समझा, उन्होंने चित्रकला को साधना माना है और दूसरों को भी यही राय दी है कि कला में किसी को सचमुच दूर तक जाना है तो बिना उसे कला के व्यवसाय से अलग रखना होगा क्योंकि कला स्वतन्त्र वातावरण में खिलती है। व्यवसाय उसे संकुचित दृष्टि देता है । उसकी प्रगति का रोड़ा बन जाता है, खासकर आजकल के जमाने में।

शुक्ल जी अपने विद्यार्थियों पर अपने विचार मनवाने के लिए कभी दबाव नहीं डालते। उन्हें स्वतन्त्र होकर चित्र रचना करने की प्रेरणा देते हैं। प्रारम्भिक दौर से शुक्ल जी पर कुछ कलाकारों का प्रभाव था। पर यह प्रभाव अधिक समय तक नहीं रहा। उन्होंने अपने आसपास के वातावरण को चित्रों का विशय बनाया है। समाज की वर्तमान समस्यायें, परिस्थितियां अभिव्यक्ति के लिए इनको विशेष रूप से विवश करती रही है। चित्रकार, साहित्यकार, कवि, लेखक या अन्य कलाकार अपने जमाने के जागरूक प्रहरी होते हैं। उनका कार्य है लोगों को सचेत करना, जगाना और समस्याओं से डटकर लोहा लेने की प्रेरणा देना। प्रो॰ शुक्ल के चित्र इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित हैं। कलाकार का काम आदर्श कल्पना लोक का निर्माण करना नहीं है बल्कि मानव समाज को स्वस्थ, समृद्ध मानवीय गुणों से परिपूर्ण तथा प्रगतिशील बनने के लिए प्रेरित करना है। प्रो॰ शुक्ल का मानना है कि कलाकार को कभी अपने विगत अपने कलाकारों अथवा समकालीन कलाकारों की कला को अपनी कला का आधार नहीं बनाना चाहिए। कलाकार को जो पसन्द हो, मुक्त होकर वही चित्रित करना चाहिए। प्रो॰ शुक्ल का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में दिखता है। वे माध्यम व तकनीक को कभी भावों पर हावी नहीं होने देते और न सर्वदा एक लीक पर चलने के आदी हैं। कभी बाल सुलभ भाव से रेखायें खींचते हैं और उनमें आकृति ढूंढते हैं, कभी अपनी परम्परागत लोक शैली की तरफ झांकते हैं तो कभी आधुनिक कला का स्वाद चखते हैं। शुक्ल जी के अनुसार, "चित्रकार के चित्र उस कलाकार के अवशेष हैं जिनके अनुरूप उसने अपना जीवन निर्वाह किया है। जिस प्रकार सीप तथा घोंघे का जीव मरकर अपना अवशेष छोड़ जाता है उसी प्रकार कलाकार के चित्र भी हैं।

प्रो॰ शुक्ल का मानना है कि "भावों के साथ प्रवाहित होकर तत्परता से अभिव्यक्ति करने में रेखाओं के द्वारा जो सुगमता और कुशलता प्राप्त होती है वह रंगों के प्रवाह के द्वारा नहीं हो पाती। रेखाओं के द्वारा जो गति और तीव्रता पकड़ी जा सकती है वह चित्रकला के और किसी रूप से नहीं। आधुनिक कला में तीव्रता की प्रमुखता है इसलिए रेखाओं की भी है। आधुनिक कला सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्ति करती है और रेखाओं के द्वारा यह सुगमता से हो पाता है। प्रो॰ शुक्ल के चित्रों में मुख्य रेखाएं हैं जो पहले भावाकृति की गति को पकड़ती है फिर उन्हीं के सहारे आकृति का प्रस्फुटन होता है। यह मुख्य रेखायें कोई और अर्थ नहीं रखती और कभी–कभी आकृति की साधारण स्वाभाविकता को भी विकृत करती सी लगती है, पर इनका प्रयोग जानबूझकर विकृति लाने के लिए नहीं किया जाता है। यह रेखायें पहले ही बनती हैं और बाद में भी रहती है ताकि मुख्य गति या लय नष्ट न होने पायें ।

प्रो॰ शुक्ल अपने विद्यार्थियों को जब भी कोई बात समझाते हैं तब उनकी भाषा शैली इतनी सरल व स्पष्ट होती है कि विद्यार्थी विषय को आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। उनका

अपनी भाषा शैली पर जितना नियन्त्रण है उतना ही लेखनी व ब्रश पर भी है। ऐसा कम ही होता है कि जिसका सैद्धान्तिक व प्रायोगिक पर समान अधिकार हो, इसलिए प्रो॰ रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि चित्रकला के विद्यार्थी का पहला कार्य होता है प्रकृति निरीक्षण, चित्र बनाने से पहले उसे प्रकृति को देखना–सीखना पड़ता है, प्रकृति की सुन्दरता अनन्त है। इस अनन्त सुन्दरता का रसपान जो नहीं कर सकता वह चित्रकार हो ही नहीं सकता। एक बार प्रकृति की सुन्दरता का रसपान कर लेने पर उसके सामने सौन्दर्य का एक कोश खुल जाता है। उसमें से चित्रकार जितना चाहे उतनी सुन्दरता का निरन्तर रसपान करते रहने से तथा उसकी सुन्दरता के आधार पर पता लग जाने पर चित्रकार अपने चित्रों को भी सुन्दरता से भर सकता है। वर्तमान में प्रचलित आधुनिक कला पश्चिमी आधुनिक कला की पथगामी बनकर न तो प्रगति कर सकती है और न ही समाज को अनुप्राणित कर सकती है और न ही कलाकार के लिए जीविकापार्जन का साधन बन सकती है। जो कला अधिकांश देशवासियों के लिए इतनी दुरूह तथा अनबूझ पहेली बन चुकी है क्या उसे भी वह अपना सकते हैं? जो कला दर्शकों के समझ में नहीं आती, उन्हें प्रभावित नहीं कर पाती, उसको ऊँचा मूल्य देकर कौन खरीदेगा? इतना ही नहीं पश्चिमी देशों के कला प्रेमियों को भी यह जरा भी आकर्शित नहीं कर पाती क्योंकि वह ऐसी कला के मूल स्वरूपों को अपने देश में पहले ही देख चुके होते हैं अर्थात् विदेशों के बाजारों में भी भारतीय तथा कथित आधुनिक कलाकृतियों को खरीदने वाला अथवा प्रश्रय देने वाला कोई नहीं मिलता। भारत का एक भी कलाकार ऐसा नहीं है जिसे पश्चिम में महत्त्वपूर्ण माना गया हो। जो कला अपने देश में भी निरर्थक हो और विदेश में भी जिसकी कोई गणना न हो, ऐसी कला का क्या उद्देश्य हो सकता है?

इसमें कोई शक नहीं कि कला एक सार्वभौम भाशा है जिसकी न तो कोई भौगोलिक सीमा है, न सामाजिक या जातीय बन्धन, फिर भी काल की कला, जाति या समाज की कला, सम्प्रदाय की कला, किसी समय विशेश की कला, विभिन्न अंचलों अथवा देशों की कला का स्वरूप भिन्न होता है। इसका मूल कारण है विचारों की भिन्नता, जीवन दर्शन की भिन्नता, धार्मिक अथवा सामाजिक मान्यताओं की भिन्नता। इतना ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति की कला दूसरे व्यक्ति की कला से भिन्न हो सकती है जैसे कि उन दोनों के चेहरे भिन्न होते हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि "आधुनिक कला में यातायात के साधन इतने तीव्रगामी अथवा सहज हो गये हैं कि विचारों और कला में भिन्नता समाप्त हो रही है। यह बात बहुत कुछ सही भी हो सकती है किन्तु यह सोचने की बात है कि यदि सभी व्यक्तियों के चेहरे एक से हो जायें, सभी के आचार–विचार जीवन दर्शन, कलायें एक सी हो जायें तो मानव समाज का जीवन तथा स्वरूप कितना नीरस और निर्जीव हो जायेगा। वास्तव में पहले तो ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि मानव की प्रकृति ही इसके विपरीत है और यदि ऐसा होता भी है तो इसे मानव बुद्धि, विवेक, कलात्मकता तथा प्रतिभा का ह्रास ही माना जायेगा। हो सकता है कि मशीनीकरण तथा अतिशय औद्योगिकता का यही परिणाम हो पर वह दिन मानव जाति के लिए एक बुरा दिन होगा।

आजकल आधुनिक कला के नाम पर ऐसी कला प्रदर्शित की जा रही है जिसका सम्भवतः समाज से दूर का भी सम्बन्ध दिखाई नहीं देता । यह ऐसी कृतियाँ होती हैं जिसको

देखकर यह पता नहीं चलता कि उसमें क्या दर्शाया गया है। चित्रों में केवल विभिन्न रंगों के धब्बे, टेढ़ी–मेढ़ी, आड़ी–तिरछी रेखायें या अनबूझ किस्म के सूक्ष्म आकार दिखाई पड़ते हैं जिनको देखकर यह बिल्कुल समझ में नहीं आता कि उनका तात्पर्य क्या है? वे क्यों दर्शाये गये हैं? कुछ ऐसे चित्र भी प्रदर्शित किये जाते हैं जिनमें जो भी वस्तुएं अथवा आकृतियाँ रहती हैं वे टेढ़ी–मेढ़ी अथवा विकृत सी लगती हैं। उनका भी चित्रित करने का मूल आशय क्या है समझ में नहीं आता। ऐसा लगता है कि कलाकार ने चित्रों में उट–पटांग, अनाप–शनाप जो भी मन में आया बिना सोचे चित्रित कर दिया। जब वह चित्र दर्शकों की समझ में नहीं आते और वे कलाकार से जानना चाहते हैं कि इसमें उसका क्या आशय है, तो वे चित्रकार कहते हैं यह आधुनिक कला है, सबके समझ में आने वाली चीज नहीं। बस जो समझ मे आये देखिए। वह कुछ भी समझाने के लिए तैयार नहीं होते। कला जगत की इन विकृतियों ने प्रो॰ रामचन्द्र शुक्ल को झकझोर कर रख दिया। तभी उन्होंने भारत के कुछ कलाकारों के साथ एक नई कला की धारा शुरू की जिसको हम समीक्षावाद के नाम से जानते हैं। समीक्षावादी कलाकारों ने वर्तमान जीवन तथा समाज की समीक्षा को अपना लक्ष्य माना। समीक्षा अब तक शब्दों के द्वारा की जाती थी। चित्रकला भी रंग, रेखा तथा आकारों की एक भाशा है। जिसके द्वारा विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यंजना की जाती है। अभिव्यंजना का मूलाधार प्रतीकों का प्रयोग होता है। अतः ये कलाकार भी प्रतीकों के द्वारा अपनी बात तथा भावना प्रकट करने का प्रयास करते हैं किन्तु इनका ढंग समीक्षात्मक है। वे किसी वस्तु, दृश्य, घटना अथवा समस्या को ज्यों का त्यों चित्रित न कर उस पर अपनी समीक्षा को प्रतीकात्मक ढंग से व्यंगात्मक शैली में अभिव्यक्ति करते हैं। आधुनिक जीवन इतना विद्रूप हो चुका है कि न तो सीधी–सादी अभिव्यंजना का प्रभाव पड़ता है। न ही बारीक, सूक्ष्म, दुरुह अभिव्यंजना का जैसा कि पाश्चात्य आधुनिक कला शैलियों में देखा गया है। यही कारण है कि सभी समीक्षावादी कलाकार व्यंग्य का सहारा लेते हैं। व्यंग्य और परिहास या हास में अन्तर होता है। हास–परिहास अक्सर मनोरंजन के लिए किये जाते हैं। किन्तु व्यंग्य द्वारा गहरी अथवा तीक्षण तथा मर्मभेदी अभिव्यंजना की जाती है जिसका आघात बहुत गहरा होता है। समीक्षावादी कलाकार इसी भाषा अथवा प्रतीक के द्वारा अपनी समीक्षा प्रस्तुत करते हैं जो जन–जीवन में व्याप्त है अथवा प्रचलित है ताकि उसका अर्थ दर्शक को तुरन्त स्पष्ट हो सके।

समीक्षावादी कलाकार सोद्देश्य रचना करने में रुचि लेता है क्योंकि वह व्यक्तिवादी नहीं है समष्टिवादी है और समाज के लिए अपनी कला प्रस्तुत करता है। वह वर्तमान समाज की समस्याओं, घटनाओं, सामाजिक, राजनीति, आर्थिक परिस्थितियों के अध्ययन तथा मनन के आधार पर सामाजिक दृष्टि वाली रचना ही प्रस्तुत करना चाहता है जो वर्तमान समाज को परिष्कृत तथा चैतन्य करने में सहायक हो सके। वह वैयक्तिक आत्म अभिव्यंजना में आस्था नहीं रखता बल्कि सम्पूर्ण तथा विशाल भारतीय जनमानस की आशा आकांक्षाओं की अभिव्यंजना में विश्वास करता है। उनकी आवाज बनकर अपनी कलाकृतियों के माध्यम से जोरदार शैली के द्वारा मुखर करना चाहता है। इतना ही नहीं वह असामाजिक तत्वों के खिलाफ डटकर जेहाद बोलना चाहता है ताकि उनका सफाया किया जा सके। वह सामाजिक शोषण करने वाले निहित स्वार्थियों की खुली आलोचना करना चाहता है और उनके काले कारनामों का पर्दाफाश करना

चाहता है। वह कला को इस कार्य के लिए एक सशक्त हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है और मात्र मनोरंजन के लिए कला की रचना नहीं करना चाहता।

कला के माध्यम से समीक्षावादी कलाकारों ने समाज के कर्णधारों को ललकारा है और सामाजिक बुराइयों का नग्न चित्र उनकी आंखों के सामने खोलकर रखने की कोशिश की है। समीक्षावादी चित्रकार अपने रंग और ब्रश से जनता के सामने तरह–तरह के व्यंगात्मक परिवेशों को प्रस्तुत कर अपनी कलात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय देने के लिए साथ–साथ अपनी सामाजिक निष्ठा को भी प्रकट कर रहे हैं। आज के हालातों को देखते हुए कला का परम पावन धर्म है भी यही। उसने समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को फिर से पहचाना है और उसे निवाहने के लिए खुलकर बाहर आया हैं वह समाज के बीच पड़ी खाई को पाटने और दोनों में पुनः समन्वय लाने का प्रयास कर रहा है। यह बड़ा ही शुभ लक्षण है और इसी में कला, समाज और देश सभी का कल्याण है।

"इस सृष्टि से समीक्षावादी कला के अभियान के सूत्रधार प्रो॰ रामचन्द्र शुक्ल साधुवाद के पात्र हैं। उन्होंने और उनके सहयोगी कलाकारों ने पूरे जोर–शोर से समकालीन भारतीय कला को नई दिशा दिखाने और उसकी धारा को समाज की ओर मोड़ कर उसे सार्थक बनाने का भागीरथ प्रयास किया है।"

आज गुमराह भारतीय कला को मार्गदर्शन की जितनी जरूरत है उतनी पहले कभी नहीं रही थी। समीक्षावाद से बड़ी आशायें हैं कि वह आगामी वर्षों में यह मार्गदर्शन देने में सफल होगा जैसा कि महान विचारक टालस्टाय ने लिखा है, कला मानव के मध्य संचार और समागम का सशक्त माध्यम फिर से बनने में सफल होगी। वर्शों से कला और समाज के टूटे हुए सम्बन्ध फिर से जुड़ेंगे, देश में एक स्वस्थ वातावरण और परम्परा का अभ्युदय होगा और कला 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के रूप में कल्याणकारी सिद्ध होगी।"

सन्दर्भ–

1. रामचन्द्र शुक्ल, कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, पृ॰ 3
2. रामचन्द्र शुक्ल, कला प्रसंग, पृ॰ 17
3. तूलिकांकन – वाराणसी, सितम्बर–अक्टूबर, 1985, पृ॰ 4
4. तूलिकांकन – वाराणसी, नवम्बर, 1980, अंक–7, पृ॰ 8